सुथरे शाह जी की परीक्षा एवं बख्शीश

एक बार एक सेठ बहुत बीमार था। उसे बनारस के किसी विद्वान पण्डित ने कहा तुन अपने वजन के बराबर चाँदी के सिक्के दान करो, इससे तुम्हारा शरीर रोग मुक्त हो जायेगा। उसने चाँदी का थाल लिया उसमें अपने वजन के बरावर सिक्के डाले और उस थाल को लेकर काशी से चलता-चलता पंजाब नक आ गया। उसे कोई ऐसा संत न मिला जो चाँदी का थाल लेकर उसे रोग मुक्त कर सके क्योंकि जो वह थाल लेगा उसे उस रोग को होने की बात कही गई है। अतः उसे कोई ऐसा संत न मिला जो उसकी विपदा अपने ऊपर ले ले। इस तरह वह सेठ पंजाब से चलता-चलता हरिद्वार तक आ पहुँचा।

हरिद्वार में उस सेठ ने एक ऐसे संत को देखा जो सूर्य की ओर पीठ कर जल दे रहा था। सेठ उस संत के पास गया व बोला - महाराज, लोग सूर्य की ओर मुँह करके जल देते हैं, आप सूर्य की ओर पीठ करके क्यों जल दे रहे हैं। सन्त ने कहा, 'वह सूर्य की गर्मी क्या? जो मेरे विपरीत दिशा में जल देने को ग्रहण न कर सके। व्यक्ति के मुँह में तो हर कोई ग्रास डालता है, सूर्य तो वह है जो मेरे विपरीत दिशा में दिया गया जल भी ग्रहण करे।' सेठ ने मन हो मन सोचा - 'यही संत मेरा कष्ट दूर कर सकता है।'

सेठ ने उस संत से कहा - मैं यह चाँदी के सिक्कों से भरा थाल दान देना चाहता हूँ। मैं काशी से चलकर यहाँ तक आया हूँ। मुझे कोई भी परोपकारी मनुष्य ऐसा नहीं मिला जो मेरे इस कष्ट को लेकर मुझे रोग मुक्त कर सके। सेठ ने उनसे प्रार्थना की कि आप इस थाल को ले ले। संत ने पलभर सोचा फिर कहा - ठीक है आपको मेरे साथ इस जल के बीच चलना होगा। तब वे दोनों हर की पौड़ी के बीच में पहुँच गए। संत जी ने सेठ जी के हाथ से थाल लिया व साथ ही उसे गंगा में बहा दिया। इससे सेठ का रोग भी समाप्त हो

गया व परोपकारी संत ने लोभ का संवरण भी नहीं किया। तब उस संत ने कहा-

आर गंगा, पार गंगा, विच मै ते तूँ
सुथरा ले लहनिया, मुँह विच पाके धूँ।

यह सेठ कोई और नहीं भगवान श्रीचन्द्र के रूप में साक्षात् शिव थे, जिन्होंने बाबा सुथरे शाह जी की परीक्षा लेने के लिए सेठ का रूप धारण किया था। तब श्रीचन्द्र जी ने बाबा सुथरे शाह जी से कहा - तुम अपनी परीक्षा की कसौटी पर खरे उतरे हो। उन्होंने सुथरे शाह जी को बख्शीश दी और कहा —'सुथरे शाह जी' तुम वास्तव में सुथरा हो, भगवान का बनाया हुआ 'सुथरा' अर्थात् जिसके शरीर व आत्मा पर कोई दाग न हो। जाओ, अपने नाम से सुथरा सम्प्रदाय का निर्माण करो, जो भी तुम्हारे नाम का जप करेगा उसे मेरा (उदासीन सम्प्रदाय) आशीर्वाद भी प्राप्त होगा।

नवदल में अन्नपूर्णा एक ओंकार को मान।
दोऊ को गुरु जानिए फिर पंचतत्व पहचान।।
छः बख्शीश त्रैलोक में चार धूने प्रधान।
सहज भाव में सुमिर कर आठ में श्री चन्द्र जान।।

इस प्रकार भगवान श्रीचन्द्र जी ने छः बख्शीश में से पहली बख्शीश सुथरे शाह जी को दी। सेली टोपी प्रदान की, भेष संबंधी सब गुप्त भेद बताकर ऋद्धि-सिद्धि, वचन, सत्यता और अपने कार्यक्रम में सफल होने का आशीर्वाद प्रदान किया। यहीं से 'सुथरे शाही सम्प्रदाय' का प्रादुर्भाव हुआ।

श्रीचन्द्र भगवान जी ने कहा—'तुम्हारा जन्म ही अन्याय, अत्याचार, कुरीतियों, अंधविश्वासों एवं पाखण्डों को दूर करने के लिए हुआ है। आज संपूर्ण भारतवर्ष में हिन्दू जाति त्राहि-त्राहि कर रही है। नाना मतमतान्तरों ने

हिन्दू जाति को सारहीन एवं खोखला बना दिया है। पाखण्डवाद ने सच्चे वेदानुकूल आचार-विचारों पर आवरण डाल रखा है, उस आवरण को हटाने एवं हिन्दू जाति को आपस की कलहाग्नि से बचाने के निमित्त आपसी भेदभाव को मिटाना होगा। आज तक हजारों नहीं लाखों हमारे हिन्दू भाई भय से, लोभ से इस्लामी बना लिए गए हैं और बनाए जा रहे हैं। उनके इस अत्याचार को रोकने का प्रथम कार्य तुमको करना है। सुथरे शाह जी जाओ! अपने (सुथरे शाही सम्प्रदाय) कुछ ऐसे शिष्य तैयार करो जो हमारे देश, धर्म एवं संस्कृति की रक्षा कर सकें।' यह कहकर भगवान श्रीचन्द्र जी ने उन्हें अपना अलौकिक एवं विराट स्वरूप भी दिखाया। अपने गुरु महाराज के अलौकिक स्वरूप को देखकर बाबा सुथरे शाह जी विस्मित रह गए। उनके हृदय में प्रेम का सागर हिलोरें मारने लगा। उस समय उनकी क्या स्थिति हुई उसे न दुनिया समझ सकती है न अनुभव कर सकती है। प्रेम का सागर आँखों का बाँध तोड़कर अश्रुधारा में प्रवाहित हो उठा। अतिशय प्रेम के कारण शरीर की सुध बुध न रही। वे गुरु महाराज के चरणों से लिपट गए। बहुत देर तक गुरु चरणों में पड़े रहे, शरीर रोमांचित हो रहा था। सिसकियाँ भरते जा रहे थे और अपने प्रेमाश्रुओं से भगवान श्रीचन्द्र जी के पावन चरणों को धोते जा रहे थे। आज वे इतने प्रसन्न थे मानों कंगाल को कुबेर पद मिल गया हो या किसी दरिद्र को पारसमणि मिल गई हो। उनका मुख अलौकिक तेज के कारण दैदिप्यमान हो उठा।

उनके पास न कोई नैवेद्य था, न पूजन सामग्री और न भेंट थी। प्रेम ही उनका नैवेद्य था, प्रेम ही पूजन सामग्री थी और साक्षात् प्रेम और ज्ञान ही पुजारी बनकर बैठे थे। उस समय प्रकृति ने पूजा सामग्री के अभाव को पूरा कर दिया। नीम, पीपल आदि वृक्षों ने अपने पत्ते बिखेरकर मांगलिक वेदी बना दी। चम्पा, गुलाब आदि बेलों ने पुष्प लुटाकर उस वेदी को सजा दिया। पराग ने केसर का काम किया। बोहड़ के वृक्ष ने अपने फल गिराकर सुपारी का स्थान ले लिया। वृक्ष पर बैठे शुक, कपोत, कोयल आदि पक्षी मधुर

संगीत छेड़ रहे थे। सहसा कुछ संत भी कीर्तन करते हुए कीर्तन मण्डली सहित आ पहुँचे। उन्होंने बाबा सुथरे शाह जी को आशीर्वाद प्रदान किया। इस दृश्य को देखकर ऐसा लग रहा था मानों सभी देवतागण आकाश से नक्षत्रों सहित उतर आए हों, पतित पावनी पुण्य सलिला गंगा की लहरें भी भगवान शिव (श्रीचन्द्र जी) को पहचानकर उनके स्पर्श के लिए मचलने लगी, जिसे देखकर बाबा सुथरे शाह जी भाव विभोर हो गए। उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे। वे दोनों हाथ जोड़कर भगवान शिव से प्रार्थना करने लगे - 'हे देवाधिदेव! महादेव आपका स्वरूप कितना कल्याणकारी है। हे गंगाधर प्रभु, यह स्वरूप कितना सम है और कितना विषम है? एक ओर अमृत के भण्डार चन्द्रमा आपके मस्तक पर विराजमान हैं। दूसरी ओर भयंकर हलाहल विष आपके कण्ठ में सुशोभित है। एक ओर अनन्त प्राणियों का उद्धार करने वाली शीतल गंगा आपकी जटाओं का शृंगार करती है। दूसरी ओर भयंकर सर्प आपके शरीर के आभूषण हैं। परन्तु हे योगेश्वर आप पर किसी का कोई प्रभाव नहीं। न भयंकर विष आपको प्रभावित करता है न ये विषधर सर्प आपको प्रभावित करते हैं। आपने मुझे बख्शीश दी है तो अपने जैसी समस्थिति भी प्रदान करो। यह भयंकर सर्प रूपी संसार मुझे प्रभावित न करे। संसार की निन्दा, ग्लानि, अपमान के जहर को मैं पी जाऊँ। दूसरों की बुराई रूपी विष को मैं अपने गले में छुपा लूँ।' इस प्रकार भगवान शिव (श्रीचन्द्र जी) के स्वरूप को देख-देख कर अनेक प्रकार के भावों में बह रहे थे। उनका शरीर रोमांचित हो गया था और कण्ठ गद्‌गद् होकर अवरुद्ध आँखों से प्रेमाश्रु बहते जा रहे थे। सुथरे शाह जी ने प्राचीन प्रथानुसार गुरु चरण धोय व चरणामृत लिया। तब भगवान श्रीचन्द्र जी अपने कार्यक्रम में सफलता प्राप्त होने का आशीर्वाद दे स्वयं प्रचारार्थ अन्य देशों का भ्रमण करने के लिए चले गए।